काव्य और संगीत की एकात्मकता

शोध पत्र

* डॉ. विजयश्री शर्मा

पारस्परिक आबद्धता–काव्य और संगीत दो ऐसी कलाएँ हैं जो मानव के अन्तर्तम को झंकृत कर सात्विक आनंद की अनुभूति कराती हैं। यद्यपि काव्य और संगीत दोनों का अस्तित्व अलग-अलग है, काव्य में भावात्मक शब्दों की प्रमुखता है और संगीत में भावात्मक स्वरों की, किन्तु शब्दों और स्वरों की भावात्मक अर्थाभिव्यंजना का सहज सुंदन स्वरूप तो काव्य और संगीत दोनों के सहचर्य में ही परिलक्षित होता है। संगीत वर्च के बिना काव्य और काव्य चर्च के बिना संगीत अधूरा है।

एक ही नाद बिन्दु से उत्पत्ति–काव्य और संगीत दोनों का ही प्रादुर्भाव नाद बिन्दु के एक ही स्त्रोत से हुआ है, अत: दोनों में अन्योन्याश्रयी संबंध है। नाद से वर्ण, वर्ण से पद और पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है, वाणी से ही हमारे समस्त जगत का कार्याव्यापार चलता है अतएव यह समस्त जगत् ही नाद के आधीन है। भाव की संवेदना, ज्ञान का भंडार और विचार की शक्ति इन सब की अभिव्यक्ति वाणी के द्वारा ही होती है। वह वाणी शब्दमयी और स्वरमयी है। इस लिए शब्द और स्वर नाद के आधीन हैं। अनुभव और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए नाद का द्विधा प्रयोग होता है, एक वर्ण रूप में और दूसरे स्वर रूप में। वर्ण रूप में नाद की चर्चा काव्य का विषय है और स्वर रूप नाद की चर्चा संगीत का विषय है।

नादब्रह्म–नाद की इस प्रतिष्ठा के कारण ही उसे संसार का समस्त चैतन्य अद्वितीय, आनन्दमय व सर्वव्यापी कहा गया है। नाद को नादब्रह्म कह कर संबोधित किया गया। नाद को सबसे बड़ा मंत्र एवं नादानुसंधान को सबसे बड़ी पूजा बताया गया है।

नादोत्पन्न शब्द–ब्रह्म से संसार का प्रारम्भ माना गया है। मैक्समूलर ने अपने वेदान्त विषयक व्याख्यानों में दिखलाया है कि अग्रेंजी शब्द 'वर्ड' संस्कृत धातु 'वृ' से निकला है। इसी से ब्रह्म शब्द बना और वह ब्रह्म ही संसार का आरम्भ है। श्री मद्‌भगवद्‌गीता में भी कहा गया है कि एक शब्द ॐ इस ब्रह्माण्ड को प्रगट करता है। इसी शब्द ब्रह्म से वेद, वेद से कर्म, कर्म से यज्ञ, यज्ञ से बादल, बादल से अन्न और अन्न से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सभी प्राणी शब्द ब्रह्म से उत्पन्न और रक्षित हैं। शब्द ब्रह्म को भली भांति जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

सरस्वती का प्रतीक–सरस्वती को एक साथ काव्य और संगीत की देवी मानकर उसे वीणा पुस्तक धारिणीम् कहा गया है। चतुर्भुज सरस्वती की तीन भुजाओं में वीणा, पुस्तक व माला है और चौथी भुजा अभय मुद्रा की है। यह चारों प्रतीक बड़े सार्थक एवं रहस्यपूर्ण है। वीणा पाणि के एक हस्त में वीणा संगीत और उसके माध्यम से प्राप्त होने वाले उस संगीतानन्द का प्रतीक है, जो बिना भाषा के ही नादब्रह्म की अनुभूति करा देती है। दूसरे हस्त में माला शब्दों के आधार, अक्षरों की प्रतीक है। अकार से हकार तक के वर्ण रूद्र भगवान् के डमरू से निकले अ इ उ ण-हल आदि चौदह सूत्र प्रसिद्ध हैं। अकार से आरम्भ कर क्षकार तक के अक्षरों की माला से ही जप करने का विधान है। सरस्वती के तीसरे हस्त में पुस्तक शब्दशक्ति का प्रतीक है। पुस्तक के प्रतीक में शब्द-वाक्य आदि गद्य रूप हैं वैसे ही पद-पाद-पद्य आदि छन्द रूप भी हैं। यह सभी वाणी का ही स्वरूप हैं। महाकवि कालिदास ने भी इसी तत्व का उल्लेख किया है। सरस्वती का चौथा हस्त अभय मुद्रा में स्थित है। इसका तात्पर्य यही है कि ऊपर लिखे तीनों साधनों के शक्ति रूप शास्त्रों से सरस्वती जिस ज्ञान रस का वितरण कर रही है, उसी ज्ञान से अभय रूप शान्ति रस का भी वितरण कर रही है।

मूलतत्व समान–काव्य और संगीत दोनों का आधार नाद है। काव्य और संगीत दोनों ही एक दूसरे के आस्तित्व में सहायक हैं क्योंकि दोनों के मूल तत्त्व समान हैं। अन्तर केवल अभिव्यक्ति के माध्यम का है।

काव्य, शब्द और अर्थ के माध्यम से तथा संगीत, स्वर और लय के माध्यम से भावाभिव्यक्ति के समान प्रयोजन हेतु आनन्दानुभूति की समान लक्ष्यपूर्ति के लिए प्रयुक्त है। कोई भी काव्य रचना भावविहीन नहीं हो सकती और जहाँ भावों की विद्यमानता है, वहाँ संगीत स्वयंमेव उपस्थित रहता है। दूसरी और शब्द के अभाव में संगीत का गत्यात्मक विकास अवरूद्ध हो जाता है, यहाँ तक कि स्वर की साधना में भी शब्दाचार आवश्यक है। संगीत के प्रथम स्वर षड्ज अर्थात् स के उच्चारण में ही स और अ मिले हुए हैं। स शब्द है और अ संगीत। व्यंजन में सुर समाया है। शब्द में ही स्वर भी स्थित होता है। शब्दोच्चारण के साथ ही स्वरोच्चारण स्वत: हो जाता है। यह स्थिति गद्य और पद्य दोनों में होती है। गद्य और पद्य के स्वर में अन्तर यही है कि पद्य का स्वर संगीतात्मक होने के कारण तुरन्त पहचान में आ जाता है जबकि गद्य के स्वर में यह पहचान कठिन होती है। इसका कारण यह है कि संगीत में प्रयुक्त स्वर का स्थान सुनिश्चित होता है। इसी कारण उसकी पहचान सरल होती है। इसी पहचान के आधार पर स, रे, ग, म, प, ध, नि, स्वरों के नाम रखे गए। संगीतात्मक स्वरों की भांति गद्य में स्वरों के स्थान सुनिश्चित नहीं होते, अत: उनकी पहचान भी सुनिश्चित नहीं होती।

एकात्मक स्वरूप–'स्वर' एवं 'लय' संगीत के दोनों अनिवार्य तत्व हैं और यही वह तत्व हैं जो शब्दों को 'काव्य' का स्वरूप प्रदान करते हैं, गद्य और पद्य में अन्तर करते हैं।

स्वर–मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए वाणी का सहज माध्यम अपनाता है किन्तु इस वाणी के साथ ही ध्वनि का उतार चढाव भी वाणी के उच्चारण में स्वत: ही होता रहता है। यदि ऐसा न हो, तो शब्दों से अपेक्षित भाव प्रकट नहीं होते। ध्वनि का यह उतार चढाव शब्दानुकूल न होने पर उचित अर्थ-बोध नहीं होता केवल इतना ही नहीं शब्द और ध्वनि (उतार-चढाव) असंगत होने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

स्वर का उतार-चढ़ाव–स्वर के इसी उतार-चढाव से 'संगीत' निर्मित है। संगीत की पारिभाषिक शब्दावली में क्रम से स्वरों के ऊँचे चढ़ने को 'आरोह' और नीचे उतरने को 'अवरोह' कहते हैं। स्वर के इसी उतार-चढाव से प्राप्त

*शोधार्थी, संगीतश्री, दुर्गा कॉलोनी, महात्मा हंसराज रोड़, जालन्धर, पंजाब

विभिन्न अंतरालों के स्वर और उन स्वरां के विशिष्ट समूह मनोभावों को व्यक्त करते हैं। इन्हीं स्वरों व सप्तकों के अन्तर्गत संगीत का समस्त कार्यव्यापार चलता है। इस प्रकार काव्य तथा संगीत दोनों में भाव बोधन के लिए स्वर आधार है।

लय–स्वर के अतिरिक्त 'लय' अर्थात् गति ऐसा प्रमुख तत्व है जो काव्य व संगीत दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। 'लय' उस गति या चाल को कहते हैं जहाँ समानता, एकरूपता, नियमितता हो। नियमित गति ही 'लय' है।

लयात्मक प्रवाह–वस्तुत: संगीत का लय तत्व ही काव्य में 'प्रवाह' का नाम व रूप धारण कर लेता है। काव्य में कविता के छन्दों का 'प्रवाह' ही 'लय' है। छायावादी कविता पारम्परिक छन्दों से चाहे मुक्त हो परन्तु इस लयात्मक प्रवाह से वह भी मुक्त नहीं। यही लयात्मक प्रवाह संगीत में प्राण सदृश संचरण करता है। स्वर और लय का अभिसार ही तो संगीत है। संगीत में 'लय' और 'ताल' शब्द काव्य के 'प्रवाह' और 'छन्द' के ही पर्याय हैं। काव्य के लयात्मक प्रवाह के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

२. मंगल करनि कलिमल हरनि
तुलसी कथा रघुनाथ की।। रा.च.मा.१-९-छंद

३. नमामीशमीशान निर्वाणरूपं रा.च.मा. ७-१०७-छंद

५. मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो बरू,
सहज सुंदर साँवरो। रा.च.मा. १-२३५-छंद

उपर्युक्त पंक्तियों के उच्चारण में बिना लय का क्रम उत्पन्न किये ये निष्प्राण सी लगेंगी, किन्तु इन्हें यदि इनके निश्चित (स्वाभाविक) लय क्रम में विभाजित कर दिया जाए, तो इनका रूप ही बदल जाएगा। प्रथम छन्द ३,२,२ के क्रम में विभाजनीय हैं।

मात्रा विभाजन						
	१ २ ३	१ २	१ २	१ २ ३	१ २	१ २
शब्द						मं –
	ग ल क	र नि	क लि	म ल ह	र नि	तु ल
	सी – क	था –	र घु	ना – थ	की–	
कुल मात्राएँ						
	१ २ ३	४ ५	६ ७	७ ८ १०	११ १२	

१३ ९४

इस छन्द की पंक्तियाँ ७-७ मात्राओं की हैं और ३,२,२ (अथवा ३,४,३,४) के स्वाभाविक क्रम में सजी हैं तदनुसार ७ मात्राओं की रूपक ताल अथवा १४ मात्राओं की दीपचंदी ताल के अनुरूप है। उपर्युक्त पंक्तियों में स्वाभाविक लय ही आंतरिक छन्द-परक लय है। यदि इनकी स्वाभाविक लय विभाजन में इन पंक्तियों को उच्चारित न करके किसी अन्य प्रकार से इन्हें कहा जाए, तो ना ही इनमें यह काव्यात्मकता आएगी और ना ही संगीतात्मकता। इस प्रकार इन पंक्तियों को इनके उपर्युक्त स्वाभाविक लय प्रवाह के उच्चारण में काव्यात्कता व संगीतात्मकता उत्पन्न हो गई, जो इस लय प्रवाह के बनने से पहले नहीं थी। जब शब्द व स्वर एक नियमित क्रम में निबद्ध हो जाते हैं तो हृदय पर उनका एक आन्नददायक प्रभाव पड़ता है। लय से आन्नद की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति दोनों होती हैं।

काव्य तथा गान–काव्य और संगीत की पारस्परिकता का विार करते समय यह वास्तविकता ध्यान में रखनी होगी कि कविता की प्रभावोत्पदकता उसके गान में ही है और संगीत भी काव्य होकर ही अपना पूर्ण प्रभाव डाल सकता है। काव्य का आरम्भ ही गान के लिए हुआ। जो गाया गया वह काव्य ही है। वैदिक युग के ऋचागान में काव्य व संगीत का सुंदर योग दिखाई देता है। महर्षि वाल्मीकि को यदि आदि कव और उनकी रामायण को आदिकाव्य माना जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रामायण की रचना करके महाकवि ने लव-कुश को रामायण गान की ही शिक्षा दी। यहाँ यह भी दृष्टि विगत नहीं किया जा सकता कि जहाँ रामायण की काव्य रचना वाल्मीकि द्वारा हुई वहाँ उसकी संगीत रचना भी उन्हीं के द्वारा हुई। संगीत रचना के लिए वे किसी संगीताचार्य के पास नहीं गए थे, ना ही ऐसा कहीं उल्लेख है।

काव्य और संगीत के सहचर्य में दोनों की सार्थकता का दृष्टिकोण–यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से यह देखना समीचीन होगा कि जब तक काव्य और संगीत का यह सहचर्य बना रहा तब तक दोनों ही फले फूले और समाज के भूषण बने रहे तथा जहाँ इन दोनों में दूरी बढ़ी वहाँ दोनों का ही रूप विकृत हुआ। मुगलकाल के उत्तरार्ध में यही स्थिति बनती जा रही थी। दरबारी वातारण में काव्य और संगीत साधकों के सामने केवल अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना मात्र लक्ष्य था। ऐसा करना उस समय के प्रतिकूल वातावरण में कवि और संगीतज्ञ को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अनिवार्य हो गया। उस समय के कवि ने जहाँ नायिका भेद वर्गीकरण में नारी के नखशिख वर्णन को ही प्रमुखता दी वहाँ संगीतकार ने शब्दों की भावव्यंजक शक्ति को दृष्टिविगत करके आलाप तान सरगम आदि संगीत के व्याकरण तत्त्वों से संगीत को बोझिल बना डाला। इस प्रकार काव्य तथा संगीत दोनों ही केवल कुछ सामंती वर्ग के कुछ लोगों के सस्ते मनोरंजन का साधन बन कर रह गए। जन सामान्य से उनका लगभग संबंध विच्छेद सा हो गया। ऐसी परिस्थिति में संगीत को हीन समझते हुए बादशाह औरंगजेब को यह कहना पड़ा था कि संगीत को इतनी गहरी कब्र में दफना दो कि फिर कभी उसकी गूँज सुनाई न दे। इसके बाद संगीत का जो पतन हुआ उसकी चरम सीमा अंग्रेजों तक के समय में दिखाई दी जब समाज के सुसंस्कृत कहे और समझे जाने वाले वर्ग ने संगीत जैसी पवित्र कला को असामाजिक वस्तु कह कर तिरस्कृत किया। संगीत को इस अधोगति से उबारने वाले वर्तमान में संगीतोद्धारक कहे जाने वाले स्व. पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्कर जी ने इस परिस्थिति को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि संगीतकार के पास अच्छी संगीत रचनाएँ होने पर भी काव्य के रूप में अश्लीय और असंगत शब्दावली के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और यही उसकी अधोगति का कारण है। उन्होंने तत्कालीन संगीत रचनाओं में गाई जाने वाली अनुपयुक्त शब्दावली के स्थान पर तुलसी, सूर, मीरा, नानक आदि भक्तों संतों के भक्ति पदों को संगीत रचनाओं में निबद्ध किय। जनसामान्य ने इन्हें पसन्द किया और आदर दिया।

भक्तों के पदों की लोकप्रियता का कारण–यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तुलसी, सूर, मीरा आदि भक्ति संगीत काव्यकारों के युग में ही तानसेन जैसा महान् संगीतकार भी था, जिसे संगीत सम्राट कहा गया। तानसेन द्वारा रचित ध्रुपद (गीत) आज भी उपलब्ध हैं किन्तु वे जनमानस से दूर केवल कुछ संगीतकारों के लिए एतिहासिक महत्त्व की चीज बन कर रह गए। इसका कारण उनमें संगीत तत्व की अपेक्षा काव्य तत्व का कम होना था। परिणाम स्वरूप किंवदन्तियों के अतिरिक्त तानसेन के विषय में प्रमुखतया उनके कृतित्व के विषय में आज हमें बहुत कम ज्ञान है, और तुलसी, सूर, मीरा के गीत आज शताब्दियों बाद भी लोकप्रिय व प्रचलित हैं, तो उसका कारण उनमें काव्य और संगीत के तत्वों का यथोचित मधुर मिलन ही है। 'सूर सूर तुलसी ससी' वाक्य जितना उनके समय में सार्थक था उतना ही आज भी है क्योंकि उनकी रचनाओं में काव्य और संगीत के तत्व 'गिरा अरथ जल बीचि सम' घुले मिले हैं। पूर्णवर्णित विवेचना के उपरान्त निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि काव्य की प्रभावोत्पादकता उसके गान में हैं और संगीत भी काव्ययुक्त होकर अपने विशिष्ट रूप में प्रभावी होता है। प्राचीन काल से ही काव्य व गान में अभिन्नता रही है। भक्ति पदों की लोकप्रियता का कारण, उनमें काव्य व संगीत तत्वों का यथोचित मिलन ही है।